अध्याय आठ

उत्प्रेरणा

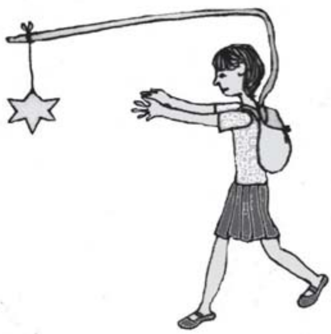

वह क्या है जो हमसे वह सब करवाता है, जो हम करते हैं ? वह क्या है जो किसी गतिविधि को प्रारंभ करने की और जब तक कोई लक्ष्य हासिल न हो जाए उसे जारी रखने की, कई बार तो भारी कठिनाइयों के समक्ष भी जुटे रहने की प्रेरणा देता है ? इस प्रश्न का जवाब एक से दूसरे व्यक्ति, एक से दूसरी परिस्थिति में अलग-अलग हो सकता है। परन्तु उत्प्रेरणा का एक सार्विक पक्ष भी होता है, क्योंकि सभी इन्सानों में प्रेरित हो पाने की क्षमता होती है। यह याद रखना ज़रूरी है कि : जब हम कहते हैं कि कोई व्यक्ति 'उत्प्रेरित' (अनमोटिवेटेड) है तो ऐसा शायद इसलिए होता है क्योंकि वह उन चीज़ों को नहीं कर रहा होता जो *हम* चाहते हैं कि वह करे। शिक्षकों के रूप में हम जानते हैं कि जब हमारे छात्र सीखने को प्रेरित होते हैं तो हमारा काम आनंददायी बन जाता है। जब स्कूली काम के प्रति प्रेरणा का अभाव हो, तो पढ़ाने की हमारी तमाम चेष्टाएँ एक अंधा-कूप में गायब होती लगती हैं, और हम कुण्ठित हो जाते हैं। अतः एक बेहद महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि : मैं अपने छात्रों को सीखने के प्रति कैसे उत्प्रेरित करूँ?

मनोवैज्ञानिक परंपरागत रूप से दो प्रकार के उत्प्रेरण की बात करते रहे हैं : आंतरिक

(इन्ट्रिन्सिक) तथा बाह्य (एक्सट्रिन्सिक)। क्या आपने किसी नन्हे शिशु को अपने-आप, पहली बार, पेट के बल मुड़ने की कोशिश करते देखा है ? आपने उसकी दृढ़ता, एकनिष्ठ एकाग्रता और लगातार प्रयत्न पर गौर किया होगा, जो शिशु लक्ष्य प्राप्त होने तक जारी रखता है। अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में शिशु जो कुछ हासिल करते हैं, उन तमाम चीजों को सीखने और उसका अभ्यास करने में वे इतनी मेहनत भला क्यों करते हैं ? अगर आप जवाब में 'उसके अपने आनंद के लिए' या ऐसा ही कुछ कहते हैं, तो आप **आंतरिक उत्प्रेरण** की स्थिति का वर्णन कर रहे होते हैं।

आंतरिक उत्प्रेरण हमारे अंदर की कुछ ऐसी चीज़ होती है जो हमें कुछ लक्ष्यों को हासिल करने, कुशल होने, आज़ादी और स्वायत्तता का भाव महसूस करने की ओर ले जाती है। इसे हम खेल में, खोजने में, चुनौतियों को तलाशने में, देख पाते हैं -- अर्थात् जो भी गतिविधि हम पर लादी न गई हो, जिसे हम स्वेच्छा से कर रहे हों। सच तो यह है कि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि उद्‌विकास की दृष्टि से सभी मनुष्यों के लिए प्रेरणा अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि यह हमें ऐसे कृत्य करने की दिशा में ले जाती है जो हमारे बचाव के लिए सही हों।

इसके बावजूद, और यह हम शिक्षकों के लिए बहुत जरूरी है, बाल्यावस्था में किसी बिन्दु में हम पाते हैं कि ऐसी चीज़ों की सूची क्रमशः बढ़ने लगती है, जिनको बच्चे आंतरिक प्रेरणा से *नहीं* करते। और इस लंबी सूची में अधिकाधिक ऐसे काम होते हैं जिनकी माँग स्कूल करते हैं। सफाई करने तक की गतिविधि, जिन्हें कभी 'खेल' के रूप में किया जाता था, अब 'काम' मान लिया जाता है और उसका विरोध होता है, उससे कन्नी काटी जाती है।

इस बिन्दु पर, बच्चों से हम जो करवाना चाहते हैं उसके लिए, हम बाहरी परिणाम घुसेड़ते हैं, जैसे पुरस्कार औद दण्ड। साथ ही हम ऐसी चीजें भी कहने लगते हैं 'अगर तुम यह करते हो, तो...', और 'यह करो, नहीं तो...'। जब कोई बच्चा किसी गतिविधि को सज़ा से बचने के लिए, या कोई पुरस्कार पाने के लिए करता है हम कहते हैं कि वह गतिविधि बाहरी या **बाह्य उत्प्रेरणा** से की गई है। यों हम वादों और धमकियों के एक अनंत चक्र में प्रवेश करते हैं ताकि बच्चों से वैसा आचरण करवा सकें जैसा हम उनसे चाहते हैं।

खैर -- इससे क्या, आप सोच सकते हैं, अगर बच्चा या बच्ची वह कर रही है जिसे करने की उसे ज़रूरत है, तो फिर इससे क्या फर्क पड़ता है कि वह ऐसा क्यों कर रही है ? इस दुनिया की कई व्यवस्थाएँ बाह्यय उत्प्रेरणा के (सायास) नियोजन द्वारा सुचारु रूप से चलती हैं : धमकियाँ तथा वादे, पुरस्कार तथा दण्ड। धार्मिक परंपराएँ, आधुनिक निगम,

स्कूल तथा उच्च शिक्षण की संस्थाएँ ऐसी व्यवस्थाओं के उदाहरण हैं। मैं यह निश्चित रूप से समझती हूँ कि बाह्य उत्प्रेरक अधिकतर परिस्थितियों में सबसे तेज़ और सरल समाधान होते हैं -- क्योंकि अधिकतर (पर सभी नहीं) लोग इनके सामने अनुमेय तरीकों से अनुक्रिया करते हैं। बाह्य उत्प्रेरण दुनिया को चलाता है। पर पूरी तरह से नहीं...।

ऐसी व्यवस्थाओं के साथ-साथ मनुष्य ने हमेशा लोगों को उत्प्रेरित करने के विभिन्न तरीके भी प्रोत्साहित किए हैं -- समझ द्वारा, चुनौतियों के माध्यम से, जागरूकता बढ़ा कर, तथा आत्म-तलाश द्वारा। हमने प्रदूषण फैलाने वालों पर वित्तीय दण्ड लगाए हैं, पर साथ ही पर्यावरण की स्थिति पर जागरूकता अभियान भी चलाए हैं। हमने स्वर्ग और सुकर्मों के वादे किए हैं, पर साथ ही हम मानवीय समानुभूति तथा करुणा की गुहार भी लगाते हैं। मुझे लगता है कि इन दो प्रकार की उत्प्रेरण व्यवस्थाओं -- आंतरिक तथा बाह्य -- से दूसरा कोई भी इतने घनिष्ठ रूप से नहीं जुड़ा है जितने स्कूली शिक्षक जुड़े होते हैं। शिक्षक इन मुद्दों से वास्तव में जूझते हैं। हालाँकि शिक्षा व्यवस्था में अनेकों बाह्य उत्प्रेरक हैं, शिक्षक ही सीखने की प्रक्रिया के सबसे निकट हैं और वे ही उस स्पष्ट अंतर को भी देख पाते हैं जिसमें कोई बच्चा आंतरिक रूप से उत्प्रेरित होता है। स्वाभाविक ही है कि शिक्षक ऐसे छात्र चाहते हैं जो स्कूली काम में जिज्ञासा रखते हों और रुचि लेते हों, और स्कूल से निकलते समय महज सीखने के लिए सीखने के प्रति प्रेम के साथ निकलें।[1] दूसरे शब्दों में शिक्षकों का लक्ष्य, प्रदर्शन की उत्प्रेरणा (जो शायद भारतीय स्कूलों में व्यापक है) के बदले सीखने की उत्प्रेरणा होता है। परन्तु इस इच्छा की पूर्ति आसानी से नहीं होती।

स्कूली बच्चों में आंतरिक उत्प्रेरणा के अभाव के कई संभव कारण हैं : भावनात्मक या शारीरिक असुरक्षा तथा खराब स्वास्थ्य, उद्विकासीय बाधाएँ, सीखने की प्रक्रिया पर स्वयं का नियंत्रण नज़र न आना, पुरस्कारों का दुरुपयोग, सामग्री का अप्रासंगिक होना, काम के स्तर का कठिन होना, कक्षा का वातावरण, और सबसे महत्त्वपूर्ण बात, शिक्षकों का आचरण तथा छात्रों की मान्यताएँ। इस अध्याय में मैं इन घटकों का बारी-बारी वर्णन करूँगी और इस प्रक्रिया में हमारी कक्षाओं में घटते उत्प्रेरण स्तरों को उठाने के विभिन्न उपाय सुझाऊँगी।

1. उत्प्रेरणा को अक्सर केवल किसी उपलब्धि के माध्यम के रूप में देखा जाता है, न कि शिक्षा के *परिणाम* के रूप में। हम चाहते हैं कि छात्र सीखने के लिए उत्प्रेरित हों ताकि वे 'अच्छा' कर सकें - यह बात समझ आती है, परन्तु हम सीखने की उत्प्रेरणा को शिक्षा के वांछनीय नतीजे के रूप में भी देख सकते हैं। जो छात्र सीखने के प्रति प्रेरित हों, वे हमेशा सीखने से आनंद प्राप्त कर सकेंगे, स्कूल छोड़ने के कई सालों बाद भी यह दृष्टिकोण अपने आप में मूल्यवान है।

अपूरित शारीरिक या भावनात्मक आवश्यकताएँ

प्रेरणात्मक (मोटिवेशनल) मनोविज्ञान में एक परिचित नाम है एब्राहम मैसलॉव का, उन्होंने सुझाया था कि इन्सानों की आवश्यकताओं का एक पदानुक्रम होता है। जब इस पिरामिड के आधार पर स्थित ज़रूरतें पूरी हो जाती हैं, केवल तब ही हम ऊपरी स्तरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रति प्रेरित होते हैं। सरल शब्दों में कहें तो, अगर कोई बच्चा भूखा, चिंतित या प्रेमरहित हो, तो वह स्कूल में सीखने को प्रेरित नहीं होगा। परन्तु अगर उसकी इन ज़रूरतों की पूर्ति हो जाती है तो वह स्कूल में कुशलता पाने को आंतरिक रूप से प्रेरित होगा। इस बात की पुष्टि हमारे अनुभवों के उदाहरणों से भी होती है। जब कोई बच्चा भावनात्मक रूप से कठिन दौर से गुज़रता है (चाहे वह परिवार से संबंधित समस्या हो या साथियों से) उसका स्कूली प्रदर्शन तत्काल प्रभावित होता है। जो शिक्षक चाहते हैं कि उनकी कक्षाओं में बच्चे सीखें, उनके सामने इसके सिवा कोई विकल्प ही नहीं होता कि वे अपने छात्रों के भावनात्मक जीवन से जुड़ें। जहाँ तक शारीरिक ज़रूरतों की बात है, गरीब बच्चों के स्कूलों में शिक्षक अपना समय, ऊर्जा, और कभी तो निजी धन तक खर्च कर उन बच्चों की भूख मिटाते हैं -- जरूरतों के उपरोक्त पदक्रम को वे सहजबोध से पहचान लेते हैं।

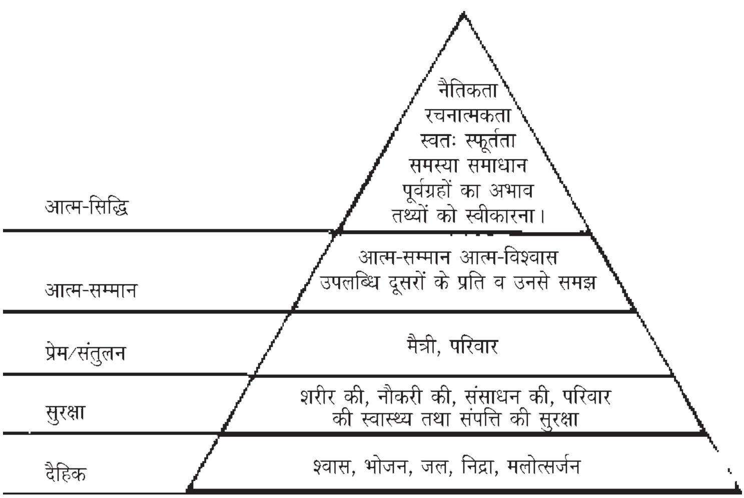

दुर्भाग्य से, भारत के बच्चों का एक बड़ा प्रतिशत इस स्थिति में नहीं है कि उनकी शारीरिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति हो, भावनात्मक आवश्यकताओं की तो बात छोड़ ही दें। जो बच्चे शारीरिक तथा भावनात्मक रूप से सुरक्षित होते हैं, उनके लिए भी सीखने की प्रेरणा एक समस्या हो सकती है।

उद्विकासीय सीमाएँ

अध्याय एक में मैंने डेविड गीअरी के जैविक रूप से प्राथमिक तथा गौण क्षमताओं के सिद्धान्त का वर्णन किया था। उसकी याद दिलाने के लिए संक्षेप में बता दूँ कि वे प्रस्तावित करते हैं कि मनुष्य का क्रमिक विकास कुछ इस प्रकार हुआ है कि वह बाल्यावस्था में मुक्त खेल व खोज द्वारा कुछ क्षमताओं (जैविक रूप से प्राथमिक क्षमताएँ जैसे भाषा की) को विकसित करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार हममें लोक-मनोविज्ञान, लोक-भौतिकी व लोक-जीवविज्ञान सीखने/विकसित करने को आंतरिक उत्प्रेरणा होती है। तथापि हम अन्य विचार, जैसे बॉयल के नियम, युकलीडियन ज्यामिति, व्याकरण, या तत्वों की आवधिक तालिका पर महारत हासिल करने की अंतःप्रेरणा के साथ शायद पैदा नहीं होते। अतः, गीअरी कहते हैं कि अगर हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे ये चीजें सीखें तो हमें उन्हें आवश्यक सहयोग सायस निर्देशों, तथा (शायद) बाह्य उत्प्रेरकों के रूप में उपलब्ध करवाना पड़ता है।

जैसे कि मैंने उक्त अध्याय में लिखा था, यह सिद्धान्त एक शिक्षक के लिए कुछ अवसादपूर्ण है। हमें लालच यह सोचने का होता है कि हमारी स्कूली पाठ्यक्रम के ज़्यादातर हिस्से को सीखना किसी बच्चे के लिए ‘अस्वाभाविक’ है; सो हम यह मान लेते हैं कि बाह्य उत्प्रेरक जैसे क्रम (रैंक) व असफलता, सम्मान तथा शर्मिन्दगी का उपयोग करना चाहिए ताकि छात्र स्कूली काम करें। हमें यह भी लग सकता है कि स्कूल में अगर हम सीखाना होते देखना चाहते हैं तो हमें गाजर और छड़ी (पुरस्कार और दण्ड) काम में लेनी ही होगी।

पर मुझे लगता है कि यह अति है। यह तथ्य प्रदर्शित हो चुका है कि इन्सान न केवल भारी मात्रा में अमूर्त ज्ञान सीखने की क्षमता रखता है, बल्कि भावी पीढ़ियों द्वारा सीखने के लिए उसकी रचना भी कर सकता है। हम यह *कर सकते* हैं, और ऐसा करते समय हमें *मज़ा भी आता है।* इस अध्याय के प्रारंभ में अंतःप्रेरणा की परिभाषा को अगर पुनः दोहराएँ, तो *हमारे अंतस में ही कुछ ऐसा होता है जो हमें कुछ लक्ष्यों को पाने की ओर, कुशल बनाने की ओर, मुक्ति तथा स्वायत्तता के अहसास की ओर धकेलता है।* ऐसी प्रेरणा को किसी भी उपक्रम पर लागू किया जा सकता है -- मुझे ऐसा कोई कारण नज़र नहीं आता जो हमें स्वयं को या हमारे छात्रों को तथाकथित ‘जैविक रूप से गौण क्षमताओं’ के प्रति उत्प्रेरित होने से रोके। आगामी पृष्ठों में आप कुछ सुझाव व विचार पाएँगे, जो इस चेष्टा में आपको दिशा दिखा सकते हैं।

सिर्फ यह याद रखें : उद्विकासीय सीमाएँ अगर दरअसल होती हैं, तो वे स्कूल में सीखने की प्रेरणा को न तो स्वचालित बना सकती हैं न असंभव ही, बल्कि वे यह संकेत देती हैं कि हमें सिखाने को लेकर अधिक कल्पनाशील और ऊर्जावान होना चाहिए।

दृश्य नियंत्रण का अभाव

आत्म-निर्धारण सिद्धान्त (सेल्फ डिटरमिनेशन थियोरी या एस.डी.टी.) नामक एक नया सिद्धान्त उस बाह्य उत्प्रेरण की बात करता है जो कम या अधिक सीमा तक **आत्मसात्** कर लिया गया हो। यह कथन विरोधाभासी लगता है : अंतस्थ बाह्य उत्प्रेरण -- इसका अर्थ भला क्या हो सकता है ? अगर आचरण के बाहरी कारण हमारे लिए पूरी तरह बाहरी रहते हैं तो हम केवल उसकी अनुपालना के लिए ही काम करते हैं (गाजर और छड़ी प्रतिमान) और उन शक्तियों द्वारा स्वयं को नियंत्रित महसूस करते हैं। परन्तु मान लें कि हम इन्हें कुछ हद तक आत्मसात् कर लेते हैं, तो हम ऐसा आचरण करेंगे कि हम अपने आत्म-सम्मान (स्व-मूल्य का अहसास) को कायम रख सकें या उसे बढ़ा सकें। हालाँकि तब भी हम दूसरों के फैसलों या उनके मन में हमारी छवि जैसी बाहरी ताकतों द्वारा नियंत्रित होंगे। मान लें कि हम उन्हें अधिक सीमा तक आत्मसात कर लेते हैं, तो हम इसलिए वह गतिविधि करेंगे क्योंकि हम उसके कारणों को 'समझ' चुके हैं, फिर चाहे वह गतिविधि हमें अपने आप में मज़ेदार लगे या न लगे। मुझे लगता है कि मैं कई चीज़ें इस प्रकार के उत्प्रेरण के कारण करती हूँ। अपने छात्रों की कॉपियों को जाँचने का उदाहरण ही लें। यह करने की आंतरिक प्रेरणा मुझमें बिरले ही होती है, क्योंकि यह कोई मज़ेदार काम तो है नहीं। फिर भी मैं यह नियमित रूप से करती हूँ, क्योंकि इसे मैं एक शिक्षिका के रूप में अपने काम का आवश्यक (फिर चाहे थकाऊ ही क्यों नहीं) काम मानती हूँ। मैं जानती हूँ कि अपने छात्रों के सीखने से संपर्क में रहने का यह एक महत्त्वपूर्ण तरीका है, और यह प्रतिपुष्टि उनकी और मेरी मदद करेगी।

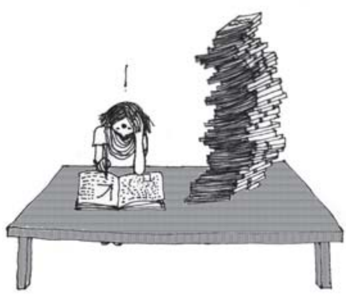

इसलिए इस काम को क्योंकि मैंने मूल्यवान मान लिया है, यह मुझे अपने कृत्यों पर स्वायत्तता या नियंत्रण का अहसास भी देता है (*मैं कॉपियों को जाँचने का काम चुनती हूँ*), बनिस्बत स्वयं को बाहरी घटकों द्वारा नियंत्रित महसूस करने के (*मुझे कॉपियाँ जाँच लेनी चाहिए, नहीं तो मैं मुश्किलों का सामना करूँगी*, या *अगर मैं कॉपिया जाँचती हूँ तो मैं एक अच्छी शिक्षिका हूँ*)।

निम्नोक्त चरण हमारे कृत्यों के क्रमशः अधिकाधिक अंतस्थ उत्प्रेरण की प्रगति को दर्शाते हैं :

-- मैं यह करुँगी ताकि मुझे वेतनवृद्धि मिले या मैं आरोपों से बचूँ।
-- मैं यह करुँगी ताकि दूसरों के मन में मेरी छवि अच्छी बने।
-- मैं यह करुँगी क्योंकि यह काम ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण है।
-- मैं यह करुँगी क्योंकि मुझे ऐसा करने में मज़ा आता है।

शिक्षकों के रूप में हमें सीखने को दो पथों से प्रोत्साहित करना होता है जो उपरोक्त सूची में आखिरी दो प्रविष्टियों के अनुरूप हों : सीखने और महारत हासिल करने में रुचि तथा चुनौती का भाव संप्रेषित कर (आंतरिक उत्प्रेरण, तथा छात्रों को इस सीखने की सार्थकता का भाव संप्रेषित कर (आंतरिक रूप से नियामित बाह्य उत्प्रेरण)। जब तक छात्र जो कर रहे होते हैं उसमें सार्थकता को, या अपने काम पर नियंत्रण की भावना को खो नहीं देते, हम शिक्षक अपना काम सही तरह से कर रहे होते हैं। इस अध्याय के अंतिम भाग में आप शिक्षकों के आचरण की कुछ खासियतों के बारे में पढ़ेंगे, जो छात्रों के आंतरिक उत्प्रेरण को हतोत्साहित या प्रोत्साहित करते हैं।

पुरस्कारों का दुरुपयोग

मनोविज्ञान में एक सक्रिय तथा सम्मोहक विवाद उन लोगों में चल रहा है जो मानते हैं कि पुरस्कार आंतरिक उत्प्रेरण को **घटाता** है, अतः वांछित आचरण को भी कम कर देता है, तथा जो यह मानते हैं कि पुरस्कार आंतरिक उत्प्रेरणा तथा वांछित आचरण दोनों को **बढ़ाता** है।

पुरस्कार देना वांछनीय आचरण को *कम* कैसे कर सकता है -- आचरण पुनर्बलीकरण के बुनियादी नियमों के अनुसार क्या इसका असर ठीक उलटा नहीं होना चाहिए ? व्यवहारवादी (बिहेवियरिस्ट) परंपरा में, पुरस्कार हमेशा आचरण की बारंबारता को तब तक बढ़ाता है, जब तक पुरस्कार दिया जाता रहे; जब आप पुरस्कार देना बंद कर देते हैं, तब आचरण अपनी मूल बारंबारता में घट जाता है।

जब यह नियम चूहों तथा अन्य पशुओं द्वारा लगातार दर्शाया गया, मानवीय गतिविधियों के कई क्षेत्रों में भी पुरस्कार का नियोजित उपयोग प्रारंभ हुआ। बेशक इसके मुख्य लक्ष्य स्कूल थे। परन्तु 1970 के दशक में मनोवैज्ञानिक एडवर्ड डेची ने सुझाया कि शायद हम एक भूल कर रहे हैं। अव्वल तो उन्होंने दावा किया कि कुछ गतिविधियाँ अपने आप में ही पुरस्कृत करती हैं (यह इस बात को कहने का एक और तरीका है कि हम पहले से ही उन गतिविधियों को करने को आंतरिक रूप से उत्प्रेरित होते हैं)। दूसरे, उन्होंने कहा कि पुरस्कार का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति उसका क्या अर्थ निकालता है (अर्थात् व्यक्ति की स्वायत्तता तथा कुशलता का अहसास पुरस्कार से किस

प्रकार प्रभावित होता है)। यों कोई पुरस्कार केवल वही वस्तु मात्र नहीं होता, बल्कि वह भी होता है जिस अर्थ में पाने वाला उसे देखता है! एक बेहद खूबसूरत कार्टून दो छात्रों को डस्टर साफ करते दिखाता है और एक छात्र दूसरे दुखी छात्र को कहता है, 'तुम डस्टरों को *सज़ा* के रूप में साफ कर रहे हो ? पर मैं इन्हें *इनाम* के रूप में साफ कर रहा हूँ!'

पुरस्कारों को लेकर अपनाए गए भोले नज़रिए में एक तीसरी समस्या भी थी, और यह थी 'अति-औचित्यीकरण प्रभाव' (ओवर जस्टिफिकेशन इफेक्ट) की : जब आपको किसी ऐसी गतिविधि के लिए पुरस्कार मिलता है, जिसमें आपको वैसे भी आनंद आता है, तो आपको लगने यह लगता है कि आपने वह काम उसको करने के बजाए पुरस्कार के लिए किया था। कई प्रयोगों ने दर्शाया है कि पुरस्कार आंतरिक प्रेरणा को घटाते हैं, और इसलिए जिस गतिविधि में आपको पहले मज़ा आता था, उस पर *कम* समय बिताया जाता है।[2] एक शास्त्रीय अध्ययन मार्क लेप्प द्वारा किया गया था, जिसमें पाँच वर्षीय बच्चों को खेलने के लिए स्कैच पेन दिए गए, जो उस आयु के अधिकांश बच्चों को मज़ेदार लगते हैं। इसके बाद कुछ बच्चों को 'अच्छी तरह खेलने' के लिए पुरस्कृत किया गया (उन्हें सुंदर दिखने वाले प्रमाण-पत्र दिए गए!)। मुक्त खेल के बाद के सत्रों में इन बच्चों ने स्कैच पेनों के साथ उन बच्चों की तुलना में कम समय बिताया, जिन्हें प्रमाण-पत्र नहीं दिए गए थे। डेची के अनुसार मुख्य परिवर्ती घटक नियंत्रण की वह भावना है जो किसी कृत्य को करते समय व्यक्ति को महसूस होती है। जब पुरस्कार को आपके आचरण को नियंत्रित करने वाले घटक के रूप में देखा जाने लगता है, तो आप आज़ादी और स्वायत्तता की भावना खो देते हैं, और यह आंतरिक उत्प्रेरणा को कम कर देता है।

मैं इससे खेलूं तो आप क्या देंगे?

2. इन अध्ययनों में आंतरिक प्रेरणा को अलग-अलग तरीकों से मापा गया था : आग्रह की मात्रा तथा मुक्त कालांशों में किसी गतिविधि पर बिताया गया समय, तथा किसी गतिविधि में आने वाले आनंद के विषय में स्वयं द्वारा बताई गइ रुचि।

परन्तु पुरस्कार भी कई तरह के हो सकते हैं, और उन सभी का असर एक-सा नहीं होता। उन विभिन्न पुरस्कारों पर सोचें जो आपकी नज़र में आए हैं। वे ठोस हो सकते हैं (कोई प्रमाण-पत्र या इनाम), या मौखिक (सकारात्मक या पॉज़िटिव फीडबैक)। वे किसी काम को करने की चेष्टा करने के लिए दिए जा सकते हैं, या सिर्फ उसे पूरा कर लेने पर। वे किसी तयशुदा मानक को हासिल करने के लिए दिए जा सकते हैं, या फिर दूसरों से बेहतर करने के लिए। विभिन्न प्रकारों के पुरस्कारों का आंतरिक उत्प्रेरण पर जो असर पड़ता है उसका सार-संक्षेप नीचे दिया जा रहा है।

- ठोस पुरस्कार (प्रमाण-पत्रों से लेकर मीठी गोलियों तक) आंतरिक उत्प्रेरणा को कम करते हैं और कॉलेज छात्रों की तुलना में बच्चे इसके प्रभाव के समक्ष अधिक संवेदनशील होते हैं।
- चेष्टा करने, संपूर्ण करने, दूसरों से बेहतर करने और मानकों को प्राप्त करने के लिए दिए जाने वाले पुरस्कार -- सभी तब आंतरिक उत्प्रेरणा को कम करते हैं, *जब उन्हें हमारे आचरण को नियंत्रित करने वाले तत्व के रूप में देखा जाने लगता है*।
- मौखिक पुरस्कार या सकारात्मक प्रतिपुष्टि आंतरिक उत्प्रेरणा को कम नहीं करते, बल्कि उसे बढ़ा भी सकते हैं। दरअसल अगर कोई पुरस्कार सूचनात्मक (इन्फॉर्मेशनल फीडबैक) के भाव से दिया जाता है, जैसे कि प्रदर्शन की अच्छी गुणवत्ता को स्वीकारने के लिए और जब उसकी मंशा छात्र के आचरण को नियंत्रित करने की नहीं होती, तो वह आंतरिक उत्प्रेरण को बढ़ा सकता है।
- फिर भी, हमारे स्कूलों के कई छात्र जो तयशुदा मानकों के अनुरूप प्रदर्शन नहीं करते, उन्हें अगर दिया जाए तो भी बिरले ही पुरस्कार या सकारात्मक प्रतिपुष्टि दी जाती है। इसका मतलब है लगातार अपनी कुशलता के संबंध में नकारात्मक प्रतिपुष्टि (नेगेटिव फीडबैक) पाना, जो पलट कर स्कूली काम के संबंध में आंतरिक उत्प्रेरणा को घटाता है।

उपरोक्त सूची हमें यह सुझाती लग सकती है कि हमें अपने छात्रों की प्रशंसा करनी चाहिए, उन सबको सकारात्मक प्रतिपुष्टि देनी चाहिए। परन्तु प्रशंसा भी सावधानी से ही करनी चाहिए! इस अध्याय के अंतिम हिस्से में आप उस काम के विषय में भी पढ़ेंगे जो कुछ परिस्थितियों में प्रशंसा के नकारात्मक प्रभाव होने की बात सुझाता है। बॉक्स-1 में प्रशंसा संबंधी उन सामान्य मुद्दों का वर्णन है जिन को ध्यान में रखना चाहिए।

अप्रासंगिक तथा चुनौतीहीन काम

स्कूली काम के अमूर्त, तथा बच्चों को रोज़मर्रा के जीवन व सरोकारों से दूर होने विषय में काफी कुछ कहा जा चुका है। उद्विकासीय दृष्टिकोण से, व्ययनुकूली व्यवहार (एडैप्टिव

बिहेवियर, जैसे -- खाना, मैथुन संबंध, तथा अपने वातावरण में बेहतर तरीके से बचे रह पाने के लिए उसके बारे में सीखना) के प्रति आकर्षित होने के लिए उत्प्रेरण ज़रूरी होता है। मनुष्य में, दरअसल सभी पशुओं में, ऐसी चीज़ें सीखने का उत्प्रेरण होता है, जो उन्हें उनके वातावरण से बेहतर अनुकूलित होने में सहायक हो। अतः, जब हम चाहते हैं कि बच्चे ऐसी चीज़ें सीखें जो उन्हें उनके वास्तविक जगत के वातावरण से असंबंधित लगती हों, तो क्या आश्चर्य कि उनकी प्रेरणा ढीली पड़ जाती है।

बॉक्स-1

प्रशंसा

प्रशंसा की औपचारिक परिभाषा किसी दूसरे व्यक्ति के सकारात्मक मूल्यांकन के रूप में की जाती है, जो ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाए जो मूल्यांकन के मानकों को जानता हो। यह किसी छात्र या छात्रा को अपने बारे में अच्छा महसूस करवाने का त्वरित तरीका हो सकता है, परन्तु बात यह भी है कि प्रशंसा काफी जटिल भी हो सकती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार गलत चीज़ के लिए, गलत समय, या गलत तरीके से प्रशंसा करने के कई नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं। सन् 2002 में मनोवैज्ञानिक जेनिफर हेन्डरलाँग तथा मार्क लेप्पर ने प्रशंसा के प्रभावों पर किए गए अध्ययनों की व्यापक समीक्षा की। उनके मुख्य निष्कर्ष थे :

- प्रशंसा को बाह्य नियंत्रण और इस कारण छात्र की स्वायत्तता को कम करने के रूप में देखा जा सकता है (जो डेची के सिद्धान्त के अनुसार आंतरिक उत्प्रेरण को कम करता है)।
- प्रशंसा अच्छे प्रदर्शन को जारी रखने का दबाव बना सकती है।
- प्रशंसा अपनी छवि अच्छी बनाए रखने और साथ ही दूसरों की छवि ध्वस्त करने की सनक की ओर ले जा सकती है।
- बेहद आसान काम की प्रशंसा छात्र में यह भाव जगा सकती है कि उसकी क्षमता कम है।
- अगर छात्रा को लगे कि तारीफ सच्ची नहीं है तो वह उसे साफ-साफ ठुकरा सकती है, या उसे लग सकता है कि शिक्षक उसे अच्छी तरह से जानता ही नहीं है, या (जो और भी बुरा है) वह यह सोच सकती है कि आखिर उसमें ऐसी क्या खोट है जिसे शिक्षक को छुपाना पड़ रहा है। एक अध्ययन का निष्कर्ष यह था कि हालाँकि सात वर्ष से कम आयु के बच्चे तारीफ को जस का तस स्वीकार लेते हैं, अधिकतर बच्चे बारह वर्ष की उम्र तक प्रशंसा को संदेह की दृष्टि से देखने लगते हैं। इसलिए, क्योंकि वे मानते हैं कि तारीफ इस बात का संकेत है कि आपमें लियाकत की कमी है, अतः आपको अतिरिक्त प्रोत्साहन की दरकार है!

बेशक, इस सबका मतलब यह कतई नहीं है कि हमें अपने छात्रों के काम की प्रशंसा कभी करनी ही नहीं चाहिए। तारीफ करने के सही तरीके भी होते हैं, और संक्षेप में वे ये हैं :

- गतिविधि की प्रक्रिया की प्रशंसा करें (रणनीतियों, विचारों, प्रयास) छात्र की क्षमता की नहीं।
- अपनी प्रशंसा को वर्णात्मक बनाएँ, छात्र के काम से संबंधित, ताकि वह उपयोगी पुनर्निवेश के रूप में काम करे।
- अन्य छात्रों से तुलना किए बिना प्रशंसा करें।

एक दूसरा रोचक संबंध प्रशंसा तथा उच्च आत्म-सम्मान के बीच होता है। कई सालों तक माना यह जाता था कि उच्च आत्म-सम्मान के कई सकारात्मक परिणाम होते हैं, जो बेहतर प्रदर्शन से लेकर लम्बी आयु तक हो सकते हैं! आत्म-सम्मान आंदोलन का इतिहास रोचक है, पर हाल में इसकी आलोचना भी हुई है। इस आंदोलन का वर्णन आपको अध्याय दस में मिलेगा।

फिर भी मानव समाज इतना जटिल हो गया है कि हमारे पास स्कूली पाठ्यचर्या को फैला कर तमाम ऐसी चीज़ों को, जो बालक की तात्कालिक आवश्यकताओं व परिवेश से असंबद्ध हों, शामिल करने के अलावा कोई चारा ही नहीं है। यह बात खासतौर से हाईस्कूल पाठ्यचर्या के लिए सच है। बच्चों को यह विश्वास दिलाना अगर असंभव नहीं तो कम से कम कठिन ज़रूर है कि उनके लिए सदिश (अर्थात् वह रेखा जिसमें परिणाम तथा दिशा दोनों हों, या वेक्टर) के बारे में सीखना इसलिए ज़रूरी है क्योंकि 'उन्हें' इसकी ज़रूरत है। सच्चाई यह है कि अगर वे स्कूल छोड़ने के बाद सिलाई करना या यूरोप का इतिहास सीखना-पढ़ना चाहते हैं, तो उन्हें सदिशों की कभी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। यह माँग

करना कि हाईस्कूल पाठ्यचर्या को पूरा नहीं तो अधिकांश छोड़ दिया जाए, और पाठ्यचर्या को पूरी तरह बच्चों के जीवन व परिवेश में स्थित कर दिया जाए, अव्यवहारिक है। परन्तु इसका मतलब यह भी नहीं है कि हमारी नियति अनिच्छुक बच्चों को उनके पाठों से घसीटने की ही है। न ही इसका मतलब है कि हम दर्जों और असफलता के अहसास का सहारा ले, उन्हें सीखने को प्रोत्साहित करें। बच्चों को काफी ज़ल्दी, निश्चित रूप से माध्यमिक शाला तक, उनके समाज की विशेष प्रकृति और उसकी माँगों के बारे में समझाया जा सकता है -- उन्हें बताया जा सकता है कि उन्हें छोटी उम्र में ही ढ़ेरों चीज़ें सीख लेनी चाहिए, ताकि जब वे बड़े हों जाएँ तो वे यह तय कर सकें कि वे किन विषयों को जारी रखना चाहेंगे। यह समझ उन्हें वह दे सकती है जिसे हमने पहले सीखने की *आंतरिक रूप से नियामित बाह्य उत्प्रेरणा* कहा था। यह ठीक उसी तरह की प्रेरणा है जो मुझे छात्रों की कॉपियाँ जाँचने को प्रेरित करती है। अगर अच्छा प्रदर्शन करने की चिंता और उसका भय न हो, और उन्हें कल्पनाशीलता व उत्साह से पढ़ाया जाए, तो किसी भी चीज़ को सीखना आनंददायक बन सकता है। और मानवीय उपक्रम को प्रेरित करने वाले घटकों में प्रमुख घटक आनंद ही है!

स्कूली काम का दूसरा पक्ष है कठिनाई का स्तर! जो काम हद से ज़्यादा आसान या बेहद कठिन हो उसमें बच्चों की रुचि जल्दी ही खत्म हो जाती है। चुनौती के सही स्तर को चुनना कुछ ऐसी चीज़ है जिससे शिक्षक लगातार संघर्ष करते हैं, खासकर एक ठेठ कक्षा में जहाँ बड़ी संख्या में भिन्न-भिन्न स्तरों के छात्र एक समान सामग्री पर काम कर रहे हों। लगता यह है कि किसी भी कक्षा में ऐसे कुछ छात्र होंगे ही जो इसलिए प्रेरित नहीं होते क्योंकि उनके लिए चुनौती का स्तर या तो बेहद ऊँचा या बेहद नीचा है। इस उलझन के समाधान ऐसे हैं जिसके लिए लचीले नज़रिए और कुछ मेहनत की ज़रूरत पड़ती है।

- कुछ विषयों के लिए छात्रों को उनके स्तर के अनुसार छोटे समूहों में बांट दें। उन्हें उनके स्तर के लिए उचित काम दें।
- कुछ विषयों के लिए मिश्रित स्तर के छोटे समूहों में छात्रों को बाँटें। ऐसी छोटी परियोजनाएँ ईजाद करें जिसमें प्रत्येक समूह सदस्य की अलग-अलग ज़िम्मेदारी हो और वे अपने स्तर के हिसाब से काम करें ताकि पूरे काम पर कोई आँच भी न आए।
- कुछ विषयों के लिए ऐसी सामग्री ढूँढ़ें या रचें जिनसे छात्र स्वतंत्र रूप से काम कर सकें। विस्तार विषयों को शामिल कर कुछ छात्रों को दूसरों की तुलना में अधिकाधिक चुनौतीपूर्ण काम करने की छूट दें। यह सुनिश्चित करें कि 'केंद्रीय' अवधारणाओं व प्रक्रियाओं को सभी छात्रों ने सीख लिया है।
- कुछ विषयों पर सामग्री के संबंध में छोटी समूह चर्चाएँ आयोजित करें, या

पारस्परिक शिक्षण पद्धति काम में लें, जिसका वर्णन अध्याय दो में किया गया था। यह इस तथ्य को रेखांकित करता है कि अपने 'स्तर' के बावजूद छात्रों का एक समूह सीखने वालों का एक समुदाय बन सकता है, और यह भी कि सार्थक रूप से सीखने के लिए आपको हमेशा समस्तरीय समूह की दरकार नहीं होती।

- कुछ विषयों के लिए, बेशक समूची कक्षा को भाषण दें! छात्रों पर नज़र रखें कि वे कहीं ऊब तो नहीं रहे हैं या भ्रम में तो नहीं पड़ गए। ऐसे संकेत मिलते ही अपने प्रवाह को रोकें और उन छात्रों से उनके स्तर के अनुरूप सवाल करें। किसी एक छात्र से कहें कि वह दूसरों के लिए वार्ता का सार-संक्षेप प्रस्तुत करे... एक ही पाठ में सभी को साथ बनाए रखने के कई कल्पनाशील उपाय हैं।

उपरोक्त सभी समाधानों के कुछ नुक्सान तब ज़रूर होंगे जब आप केवल एक ही तरीके का उपयोग करेंगे। अतः किसी एक ही तरीके को अपना स्थाई शैक्षणिक तरीका बनाना उचित नहीं होगा। अगर आप विषय के हिसाब से अलग-अलग समय पर, भिन्न-भिन्न तरीकों को अपनाने का लचीलापन रखें, तो कक्षा की गत्यात्मकता इन विधियों की कमियों को पूरा कर सकेगी और उसका लाभ आप उठा पाएँगे।

कक्षा के वातावरण

सीखने के प्रति छात्रों की उत्प्रेरणा को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण घटक है कक्षा में मौजूद उत्प्रेरणा प्रणाली, या कक्षा का वातावरण। मनोवैज्ञानिक इन वातावरणों को स्पर्धात्मक, सहकारात्मक, या व्यक्तिपरक कह विभाजित करते हैं। ये तीनों प्रणालियाँ कक्षा में काम करने की प्रेरणा दे सकते हैं, पर भिन्न-भिन्न कारणों से। छात्र सीखने के प्रति कौन-सा नज़रिया अपनाते हैं वह उत्प्रेरण के अलग-अलग स्रोत के परिणामों से प्रभावित होता है। इन तीन भिन्न कक्षा वातावरणों का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है।

किसी स्पर्धात्मक कक्षा में काम की प्रेरणा पाने के लिए छात्रों का ध्यान अपने सहपाठियों के प्रदर्शन पर तथा स्व-बनाम-अन्य की तुलनाओं पर केंद्रित रहता है। यह छात्रों को क्षमताओं पर सोचने की दिशा में ले जाता है। 'क्या मैं इतना चतुर हूँ कि यह कर पाऊँ? मैंने कैसा किया? उसने कैसा किया? मैं गलती नहीं करना चाहता...'। यहाँ असफल होने को टालना सबसे महत्त्वपूर्ण बन जाता है, इसका मतलब होता है चुनौतीपूर्ण स्थितियों से बचना। विडंबना यह भी है कि कुछ छात्र स्पर्धात्मक स्थितियों में कोशिश करने से भी बचते हैं, क्योंकि अगर तमाम कोशिशें करने के बाद भी वे सफल न हो सके, तो सब यही मानेंगे कि उनमें क्षमता ही नहीं थी। अतः चेष्टा ही न करना, 'सम्मान के साथ असफल होने का' एक तरीका है।

किसी **सहकारात्मक** कक्षा में छात्रों का ध्यान पूरे समूह के साझे प्रदर्शन पर केंद्रित रहता

है। छात्र 'कर्तव्यों' पर सोचते हैं और नैतिक दायित्व का एक बोध काम करने की उत्प्रेरणा उपलब्ध करवाता है। 'क्या हम सही मात्रा में मेहनत कर रहे हैं? मुझे (या उसे) काम में पर्याप्त योगदान देना चाहिए। मेरे दोस्त चाहते हैं कि मैं खूब मेहनत करूँ'। यहाँ मंशा सबसे महत्त्वपूर्ण बन जाती है और छात्र एक-दूसरे का मूल्यांकन, क्षमता के बजाए काम करने की इच्छा के हिसाब से करते हैं। आप कोशिश इसलिए करते हैं क्योंकि आपके समूह के साथियों के प्रति यह आपका 'दायित्व' होता है।

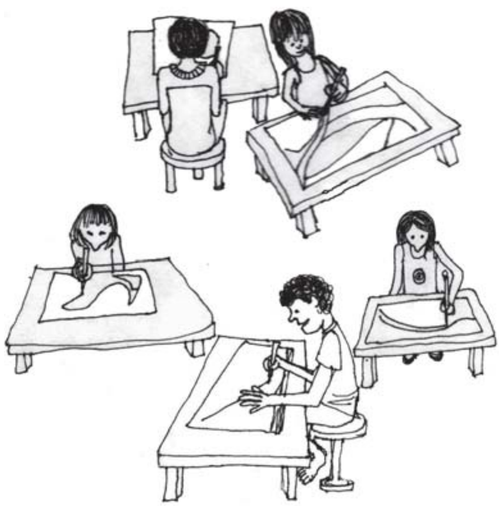

व्यक्तिपरक कक्षा में छात्र एक-दूसरे के काम से पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं तथा उनकी प्रगति का कक्षा के अन्य छात्रों से कोई संबंध नहीं होता। छात्रों को यह सोचने की दिशा में बढ़ाया जाता है कि उन्हें लक्ष्यों को स्वयं अपने लिए हासिल करना है। 'मैं जानता हूँ कि मुझमें सुधार आ रहा है। अपनी गलतियों को सुधारने का अवसर मुझे दिया जाता है। और मेरी शिक्षिका चाहती है कि मैं नई-नई चीज़ों को आजमाऊँ'। यहाँ स्वयं-बनाम-पहले -- के स्वयं के बीच तुलनाएँ रेखांकित हो सकती हैं और वे ही काम की प्रेरणा देती हैं। यहाँ चेष्टाएँ सुधार लाने के लिए, तथा अपनी पहले की उपलब्धियों को बेहतर बनाने के लिए की जाती हैं।

यहाँ कुछ रोचक विषमताओं को रेखांकित किया जाना चाहिए। जब कोई छात्रा व्यक्तिपरक वातावरण में हो, वह इस प्रश्न पर ध्यान दे सकती है, 'मैं यह भला कैसे करूँ? मुझे एक योजना बनानी चाहिए।'[3] परन्तु एक स्पर्धात्मक वातावरण में *अगर वह बहुत कोशिश करे*

३. माना यह जाता है कि एक सहकारी कक्षा में वह सोचेगी, '*हमें* एक योजना बनानी चाहिए।'

तो भी, वह शायद इसमें 'सफल' न हो पाए, क्योंकि वहाँ सफलता की परिभाषा अन्य छात्रों से बेहतर करना होती है। अतः सीखने की उत्प्रेरणा भी उस अत्यावश्यक फैसले पर निर्भर होगी, जो अपव्यय और दुख की बात है! मनोवैज्ञानिक इसे ही 'प्रयास की दुधारी तलवार' कहते हैं। यहाँ प्रयास सफलता की ओर तो ले जा सकता है, परन्तु अगर वह असफलता की ओर ले जाए, तो शर्मिंदगी होती है तथा आत्म-सम्मान खो जाता है। इसलिए एक स्पर्धात्मक वातावरण में ऐसे कठिन कामों से बचा जाता है, जो असफलता की ओर ले जा सकते हैं।

एक चेतावनीः ऊपर जो तीन प्रकार की कक्षाओं का वर्णन दिया गया है वह निश्चित रूप से स्थिति का अति-सरलीकरण है। एक ही कक्षा में सभी छात्र कक्षा के लक्ष्यों का समान अर्थ नहीं निकालते। शिक्षक उनसे मिलजुल कर काम करने को कह सकता है, फिर भी कुछ छात्र अकेले काम करना चुनते हैं। कोई अन्य शिक्षक छात्रों से स्वतंत्र रूप से काम करने की उम्मीद कर सकता है, फिर भी उसके दो-तीन छात्र एक-दूसरे के साथ सहयोग कर काम करना शुरू कर सकते हैं। और हम सभी ऐसे छात्रों को भी जानते हें, जो स्पर्धात्मक कक्षा में होने के बावजूद, उसकी बाध्यताओं की उपेक्षा कर केवल मात्र सामग्री पर महारत हासिल करने के लिए काम करते हैं।

कक्षा में किस प्रणाली का उपयोग होगा यह चयन स्कूल के शैक्षणिक दर्शन से तथा अंततः सामाजिक मूल्यों से प्रभावित होता है। परन्तु शिक्षिका ही अपनी अपेक्षाओं के माध्यम से अपने छात्र-छात्राओं को सशक्त प्रेरणात्मक संदेश संप्रेषित करती है। अगले भाग में हम शिक्षकों के उन खास किस्म के आचरणों को देखेंगे जो छात्रों की उत्प्रेरणा को प्रभावित करते हैं।

शिक्षक आचरण तथा छात्र उत्प्रेरणा

एक शिक्षक के रूप में क्या आप एक नियंत्रक हैं या फिर स्वायत्तता के समर्थक? जानने के लिए पढ़ना जारी रखें।

> *सारा एक औसत छात्रा है। पिछले दो सप्ताहों से वह उदास-सी लग रही है और कक्षा में भागीदारी नहीं करती। वह अपना गृहकार्य पूरा नहीं कर रही, पर जितना-सा काम वह करती है वह सही होता है। उसकी माँ के साथ फोन पर हुई बातचीत से कोई उपयोगी सूचना नहीं मिल पाई है। अगर आप सारा की शिक्षिका या शिक्षक हैं, तो आप क्या करेंगे?*
>
> *विकल्प-1 : उसे गृहकार्य पूरा करने का महत्त्व समझाएँगे, क्योंकि अपने ही भले के लिए इस सामग्री को सीखना ज़रूरी है।*
>
> *विकल्प-2 : उसे कहेंगे कि उसे पूरा काम अभी के अभी नहीं कर डालना है, और*

उसकी समस्या का कारण तलाशने में उसकी मदद करने की चेष्टा करेंगे।

विकल्प-3 : उसे स्कूल के बाद तब तक रोकेंगे, जब तक गृहकार्य पूरा नहीं हो जाता।

विकल्प-4 : गृहकार्य में अन्य बच्चों की तुलना में वह कहाँ है यह दर्शाएँगे, और उसे दूसरों के स्तर तक बढ़ने को प्रोत्साहित करेंगे।

1980 के दशक में डेची तथा उनके सहकर्मियों ने शिक्षक आचरणों की एक परीक्षा बनाई, जिसमें ऊपर दी गई कहानी जैसी आठ छोटी कहानियाँ थीं। प्रत्येक कहानी के चार ही विकल्प थे, जो शिक्षण आचरण के चार प्रकारों के अनुरूप थे। उपरोक्त कहानी में विकल्प-3 बेहद नियंत्रणकारी आचरण है, जिसमें शिक्षक यह तय कर लेता है कि छात्रा के लिए क्या अच्छा है और उससे वह 'करवाता' है। विकल्प-1 संयत नियंत्रण का है : शिक्षक तय करता है कि सर्वश्रेष्ठ क्या होगा, और कोशिश करता है कि छात्रा उसकी तरह स्थिति को देखे। विकल्प-4 छात्रा की स्वायत्तता का संयत समर्थन करता है : शिक्षक बच्ची को प्रोत्साहित करता है कि वह अपने सहपाठियों से स्वयं की तुलना करे ताकि उसे अपनी समस्या को सुलझाने की प्रेरणा मिले। विकल्प-2 छात्रा की स्वायत्तता का पूरा समर्थन करता है : शिक्षक छात्रा को अपनी समस्या का स्वयं समाधान निकालने को प्रोत्साहित करता है।

डेची तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों, जिन्होंने इस प्रश्नावली का कई वर्षों तक उपयोग किया, उन्होंने पाया कि स्वायत्तता समर्थक शिक्षकों (जो ऊपर दिए गए विकल्पों में दूसरे विकल्प का अनुसरण करते हैं) के छात्र स्कूल में आंतरिक उत्प्रेरणा से काम करने वाले अधिक होते हैं। परन्तु वे कौन-से किस्म के आचरण हैं जो कक्षा में स्वायत्तता समर्थक आचरणों में रूपान्तरित होते हैं? जॉनमार्शल रीव नामक एक मनोवैज्ञानिक द्वारा किए गए एक अध्ययन में एक वयस्क को कुछ पहेलियों को सुलझाने का काम, एक ऐसे अन्य वयस्क की मदद से दस मिनट में करने को कहा गया, जिससे वह पहले से परिचित था। ऐसे कई 'विद्यार्थी-शिक्षक' जोड़ियों का अध्ययन किया गया, और उनके आचरणों को विडियोटेप पर दर्ज कर लिया गया ताकि बाद में उनका विश्लेषण किया जा सके। इन सभी लोगों ने एक माह पहले डेची प्रश्नावली को पूरा किया था। रीव ने पाया कि जिन 'शिक्षकों' ने उक्त प्रश्नावली में स्वायत्तता समर्थन के लिए अधिक अंक पाए थे, और जिन्होंने नियंत्रणकर्ताओं के रूप में अधिक अंक पाए थे, उन्होंने पहेली सुलझाने के दस मिनटों के दौरान *बिल्कुल भिन्न आचरण* दर्शाए। स्वायत्तता समर्थक शिक्षकों ने खासतौर से

- 'छात्रों' की बात को अधिक सुना,
- पहेली की सामग्रियों को कम समय तक अपने हाथों में थामे रखा,

- पहेली के समाधान स्वयं बताने से बचे,
- कम और सीमित संकेत दिए,
- कम आदेश दिए,
- छात्र क्या करना चाहता है पर अधिक प्रश्न पूछे,
- छात्रों की ओर से आए प्रश्नों पर अधिक अनुक्रिया की।

'लाओ, मैं बताती हूं कि किया कैसे जाता है।'

उदाहरण के लिए अधिक नियंत्रण करने वाले शिक्षकों ने इस तरह के वक्तव्य दिए 'इसे उलट डालो', 'जैसे मैंने दिखाया था, क्या वैसे कर सकते हो', 'तुम्हें पहले आधार को बना लेना चाहिए।' इसके विपरीत स्वायत्तता समर्थक शिक्षकों ने ऐसी चीजें कहीं, 'किस नमूने से शुरू करना चाहिए?', 'अब तुम्हें कैसे करना समझ आने लगा है', और 'मैं देख पा रहा हूँ कि तुम अब खीझने लगे हो!'

यहाँ एक रोचक नतीजा उभरता है। उपरोक्त कहानी में विकल्प 4 को *संयत स्वायत्तता समर्थक* विकल्प के रूप में रखने की डेची की मंशा थी। उनकी आठों कहानियों में एक ऐसा विकल्प भी था, जिसमें शिक्षक दूसरों के साथ तुलना कर छात्रों को प्रोत्साहित करता है कि उन्हें 'दूसरे बच्चों के समान करना चाहिए'। परन्तु उनकी प्रश्नावली का उपयोग करने वाले सभी शोधों में इस विकल्प का सह-संबंध स्वायत्त आचरण के बजाए नियंत्रक आचरण से अधिक पाया गया। अतः डेची कहते हैं कि हमें इसे दरअसल 'किंचित नियंत्रक' आचरण के रूप में देखना चाहिए। मुझे यह बात इस रोचक संभावना को सुझाती लगती है कि तुलना का दबाव हमारे आचरण को नियंत्रित करने का सूक्ष्म दबाव है (या कई बार इतना सूक्ष्म भी नहीं) -- कुछ ऐसा जो हमारी स्वायत्तता की भावना को कम करता है। यह सीधे-सीधे उन विचारों को पुष्ट करती है जो बॉक्स-2 में प्रस्तुत किए गए हैं।

हम शिक्षकों को अपने छात्रों की स्वायत्तता का अधिक समर्थन करने वाले कैसे बना सकते हैं? डेची ने उन बाह्य दबावों को देखने की चेष्टा की जो शिक्षकों से खास किस्म के आचरण करवाते हैं। उदाहरण के लिए, जब शिक्षकों से कहा जाता है कि यह उनकी ज़िम्मेदारी है कि छात्र 'मानकों के अनुरूप प्रदर्शन करें' और अगर वे इसे स्वयं पर एक

नियंत्रणकारी मांग के रूप में देखें, तो वे जो दबाव स्वयं पर महसूस करते हैं उसे अपने छात्रों पर भी डालेंगे। जो बात छात्रों पर लागू होती है, वही शिक्षकों पर भी लागू होती है। अगर हम चाहते हैं कि आंतरिक उत्प्रेरणा वाले शिक्षक जो अपने छात्रों की स्वायत्तता का समर्थन करते हों, अपना काम अच्छी तरह करें तो उन्हें ऐसा बनाए रखने के लिए हमें उनकी स्वायत्तता का समर्थन भी करना होगा! डेची के शब्दों में, 'जिस प्रकार बच्चों को आंतरिक रूप से उत्प्रेरित होने के लिए स्वायत्तता अभिमुख कक्षाओं की, तथा स्वयं को सक्षम व्यक्तियों के रूप में देखने की ज़रूरत होती है, ठीक उसी तरह शिक्षकों को भी स्वायत्तता अभिमुख संदर्भ की ज़रूरत होती है, जिसके तहत वे अपने निजी अभिमुखीकरण के विषय में मिली प्रतिपुष्टि का लाभ उठा सकें।' मैं भी इससे सहमत हूँ। एक अच्छा शिक्षक स्व-प्रेरित ही हो सकता है; गुणवत्ता कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो बाहर से, या ऊपर से लागू करवाई जा सके। एक घटक जो गुणवत्ता में योगदान करता है, वह पढ़ाने तथा सीखने के बारे में वह जानकारी है जो शिक्षकों को मिलती है। शिक्षण को जो स्थाई और वास्तविक रूप से सुधार सकता है, वह यही सूचनात्मक प्रतिपुष्टि है। यही वह मुख्य कारण है जिसके चलते मुझे लगा कि इस जैसी किसी पुस्तक की शिक्षकों को ज़रूरत है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात जिस पर शिक्षिका अपनी कक्षा में बल डाल सकती है, वह है **प्रवीणता** अभिमुखीकरण। इस नज़रिए का लक्ष्य यह होता है कि हरेक छात्र सभी चीज़ों को सीखे, बिना इस चिंता के कि सीखने में कितना समय लगा है। यह इस महत्त्वपूर्ण पूर्वमान्यता पर आधारित है कि 'अगर कोशिश करूँ, तो मैं भी कर सकता हूँ', और इसमें छात्र अपना ध्यान और विचार '**चेष्टा**' पर केंद्रित करते हैं। प्रवीणता अभिमुखीकरण का एक ठेठ विकल्प वह है जिसे **प्रदर्शन** अभिमुखीकरण कहा जाता है, जिसमें छात्र इसलिए काम करते हैं ताकि वे अपने सहपाठियों के साथ बने रहें या उन्हें पछाड़ सकें। यहाँ सफलता को दूसरों की तुलना में स्वयं के प्रदर्शन से नापा जाता है, और शिक्षक भी सीखने के बदले प्रदर्शन पर ध्यान केंद्रित रखता है। फलतः छात्र अपना ध्यान और विचार **क्षमता** पर केंद्रित करते हैं।

प्रवीणता -- प्रदर्शन अंतर लगभग उस व्यक्तिगत-स्पर्धात्मक अंतर के समांतर है, जिसकी चर्चा मैंने कक्षाओं के वातावरण के संदर्भ में की थी। प्रवीणता का नज़रिया उत्प्रेरणा के स्तर को ऊँचा रख सकता है -- क्योंकि सभी छात्र यहाँ अपनी असफलता को क्षमता नहीं बल्कि अपने प्रयास की कमी के रूप में देखेंगे, और उनमें भविष्य में जुटे रहने की प्रेरणा जागेगी। प्रवीणता नज़रिए से ऐसे छात्र भी प्राप्त होते हैं, जो सीखने की अधिक रणनीतियों का उपयोग करते हैं, जो 'क्या मैं यह कर सकती हूँ?' से 'यह मैं कैसे कर सकती हूँ?' की दिशा में बढ़ेंगे।

बॉक्स-2

तुलना के लिए जन्मा

जिस भी व्यक्ति ने बच्चों के किसी समूह के साथ कुछ वक्त गुज़रा हो, उसे जल्दी ही यह अहसास हो जाता है कि वे किसी समय विशेष में किसी भी *चीज़ में*, एक-दूसरे के सापेक्ष स्तर के प्रति बेहद सचेत होते हैं। सीखने के प्रवीण वातावरण भी अपवाद नहीं है, जहाँ शिक्षक सायास तुलना को प्रोत्साहित नहीं करता और बच्चों को स्वतंत्र रूप से काम करने देता है। मैंने प्रवीण कक्षाओं में छोटे छात्रों के बीच कई वार्तालाप सुने हैं, जो बहुत कुछ स्पष्ट करते हैं :

'मैं तो 72 पृष्ठ तक पहुँच भी गया। तुम किस पन्ने पर हो -- सिर्फ 55?!'

'वह सात साल की है, पर पहला स्तर कर रही है, और मैं तो छह का हूँ, पर स्तर 2 कर रहा हूँ!'

वयस्कों तथा बड़े बच्चे भी शायद अधिक भिन्न नहीं होते, तब भी जब वे अपनी बात इतनी खुल कर और साफ-साफ नहीं कहते! मुझे लगता है कि तुलना करने की आवश्यकता को 'खत्म करना' न तो ज़रूरी है, न संभव ही। फिर भी, सामाजिक तुलना, वयस्कों तथा बच्चों में समान रूप से अपनी तरह का तनाव लाती है। और कम से कम इस कारण वैकल्पिक नज़रियों को तलाशना ज़रूरी है।

जिस समय तक हम सभी छात्रों के लिए एक समान पाठ-सामग्री का उपयोग करते रहेंगे, तुलना अपरिहार्य रहेगी। अगर सभी छात्र किसी काम में एक साथ बढ़ रहे हैं, तो कुछ छात्र दूसरों से बेहतर उसे समझेंगे और अधिक जानेंगे। इसके बावजूद अगर हम प्रत्येक छात्र को स्वयं उसके द्वारा तय की गई रफ्तार से बढ़ने दें, कुछ छात्र दूसरों की तुलना में अधिक तेज़ी से बढ़ेंगे। दोनों ही स्थितियों में, छात्रों तथा शिक्षकों के दिमाग में तुलनाएँ उठेंगी। अगर यह बात हमें परेशान करती है तो हमारे सामने दो विकल्प खुलते हैं। पहला तो यह कि हमारी सामग्री पदानुक्रम वाली या एकरेखीय रूप से व्यवस्थित न हो, ताकि छात्र किसी भी क्रम में अपनी गतिविधियों को चुन सकें। दूसरा विकल्प यह है कि प्रत्येक छात्र के लिए बिल्कुल ही भिन्न सामग्री या काम हो। ये दोनों विकल्प अव्यवहारिक सिद्ध हो सकते हैं (सिवाए, शायद भाषा की कक्षा में) -- और नकली भी लग सकते हैं। तुलना को कठिन बनाने वाली परिस्थितियों को रचने और कायम रखने के बदले शिक्षक सतत तुलना के तनाव को कम करने के तरीके भी अपना सकता है।

अव्वल तो हम स्वयं भी प्रोत्साहित करने वाले घटक के रूप में तुलना का उपयोग करने से बच सकते हैं। उदाहरण के लिए, हम बच्चे से यह न कहें 'वह खत्म करे उससे पहले तुम कर दो', या 'तुम उसके जैसी क्यों नहीं बन सकतीं?' किसी काम को खत्म करने या किसी खास तरह से आचरण करने के निश्चित रूप से किसी दूसरे के समान बनने या उससे बेहतर करने के अलावा भी कई अन्य कारण होंगे! इसके बाद, हम तुलनाओं

को तथ्यात्मक रूप से स्वीकारने में छात्रों की मदद कर सकते हैं, ताकि तुलनाएँ उनके स्व-मूल्य की भावना को प्रभावित न करें। अर्थात् अगर कोई छात्र गणित में अच्छा है तो वह गणित से जूझने वाले छात्रों से किसी बुनियादी अर्थ में 'बेहतर' या अधिक 'चतुर' नहीं है। विभिन्न छात्रों को स्कूल में भिन्न-भिन्न चीज़ें आसान लगती हैं। अतः स्कूली वातावरण ऐसा होना चाहिए, जो अपने पाठ्यचर्या में कई गतिविधियों की अनुमति देता हो ताकि विभिन्न छात्रों की मज़बूतियों को तलाशा जा सके। उदाहरण के लिए, स्कूली वातावरण को यह सशक्त संदेश भी देना चाहिए कि कलात्मक क्षमता *उतनी ही मूल्यवान* है *जितनी* गणितीय क्षमता। ऐसा पाठ्यचर्या से इतर 'अतिरिक्त' या 'सह' गतिविधियों की एक लम्बी सूची जोड़ देने मात्र से हासिल नहीं होगा। भारत में इस क्षेत्र में हमें बहुत दूर जाना है; हम तो अब तक बच्चों को यह तक संप्रेषित नहीं कर पाए हैं कि *भाषा* की क्षमता उतनी ही मूल्यवान है जितनी गणित की क्षमता।

और अंत में हम स्पर्धा को संस्थागत बनाने से बच सकते हैं। इसका ज़ाहिर लाभ है बच्चे को तनाव-मुक्त बनाना, पर बात केवल मात्र इतनी नहीं है। हमारे आधुनिक समाज की अधिकतर संस्थाएँ स्पर्धा को उत्प्रेरणा की बुनियादी शक्ति मानने पर आधारित हैं। परन्तु यह तर्क कि हम सबमें स्पर्धात्मक, आक्रामक वृत्तियाँ होती हैं, कहानी का सिर्फ आधा हिस्सा ही है। हम सबमें सहकार तथा परोपकार की वृत्तियाँ भी होती हैं। शायद हमें विचार कर यह तय कर लेना चाहिए कि हम समाज में *किन* वृत्तियों को प्रोत्साहित और रेखांकित करेंगे, क्योंकि यही स्पर्धात्मक मनोवृत्ति उस अपक्रिया (डिस्फंक्शन) में भी परिणित होती है, जिसे हम अपने इर्दगिर्द देखते हैं (उदाहरण के लिए गरीबी और असमानता)।

शिक्षक कक्षा में प्रदर्शन तथा क्षमता पर बल देने के बदले समझने तथा कोशिश करने पर बल देकर प्रवीणता (मास्टरी) लक्ष्यों को महत्त्वपूर्ण बना सकते हैं। परन्तु व्यावहारिक स्तर पर बात करें, तो कई बच्चे स्वयं भी बेहद प्रदर्शन उन्मुख होते हैं। इससे मेरा तात्पर्य यह है कि वे बिना वयस्कों के उकसाए ही स्वयं स्वतःस्फूर्त रूप से अपनी तुलना अपने मित्रों से करते हैं। यही वह पहली बात है जो लोग तब प्रतिवाद में कहते हैं, जब स्कूल से स्पर्धा 'हटा देने' का सुझाव रखा जाता है; *क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि बच्चे एक-दूसरे से अपनी तुलना करें और परस्पर स्पर्धा करें?* बॉक्स-2 शिक्षा के संदर्भ में इस रोचक प्रश्न पर चर्चा करता है।

क्षमता तथा प्रयास संबंधी छात्रों की मान्यताएँ शिक्षकों के आचरण से करीब से जुड़ी हुई हैं। इसलिए हम इस अध्याय को इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के एक भाग से समाप्त करते हैं।

छात्रों की मान्यताएँ व उत्प्रेरण

कैरल ड्वेक एक मनोवैज्ञानिक हैं, जो बुद्धिमत्ता के बारे में छात्र कैसे सोचते हैं, इस छानबीन कर रही हैं। उन्होंने इस क्षेत्र को छात्रों की बुद्धिमत्ता को दरअसल नापने से अधि

ाक समृद्ध शोध का विषय पाया है। ड्वेक के अनुसार अगर कोई छात्र यह मानता है कि बुद्धिमत्ता ऐसी चीज़ है जिसकी मात्रा में **वृद्धि** होती है, जो अधिक सीखने से बढ़ सकती है, तो वह सीखने के प्रति उत्प्रेरित होगा। परन्तु वैकल्पिक सोच यह है कि बुद्धिमत्ता ऐसी वस्तु है जो लगभग एक तयशुदा **तत्व** है, और अगर कोई छात्र इसमें विश्वास करता है तो उसमें चुनौतीपूर्ण सामग्री को सीखने की प्रेरणा भी कम होगी।

1970 के दशक में ड्वेक उन बच्चों का अध्ययन कर रही थीं जो चुनौतीपूर्ण स्कूली काम के सामने एक तरह की 'असहायता' प्रदर्शित करते थे। अन्य बच्चे स्वेच्छा से चुनौतीपूर्ण काम की दिशा में बढ़ते थे, या उसे स्वयं तलाशते भी थे। इस गुत्थी का जवाब बुद्धिमत्ता के विषय में उनके विश्वासों में छिपा लगता था। और ड्वेक ने पाया कि यद्यपि छोटे बच्चे बढ़ने वाली बुद्धिमत्ता में विश्वास करते थे, बड़े होने के साथ उनमें से कुछ उसे एक तयशुदा स्थाई वस्तु मानने लगते थे। तो वह क्या है, जो इस बदलाव को उकसाता है? एक घटक तो यही है, कि वयस्क प्रयत्न के बदले क्षमता की प्रशंसा करने लगते हैं। बच्चे से यह कहना 'यह तो बहुत बढ़िया है, तुम तो बड़े चतुर हो' तत्काल दो चीज़ें करता है। अव्वल तो यह उसे स्वयं के बारे में बहुत अच्छा महसूस करवाता है। पर यह 'अच्छा महसूस करने' की स्थिति वह चतुर है की छवि को कायम रखने पर आश्रित होती है। ऐसे में असफलता का पहला संकेत पाते ही वह छवि टूट भी सकती है। दूसरे, ऐसा कहने का निहितार्थ यह भी है कि अगर वह अच्छा *नहीं करता,* तो इसलिए क्योंकि वह चतुर *नहीं* है। इससे बालक भविष्य में उन परिस्थितियों से बचता है, जिनमें वह असफल हो सकता हो। यह चुनौतीपूर्ण कार्य के समक्ष निम्न उत्प्रेरण में रूपान्तरित होता है।

ड्वेक तथा उनकी सहकर्मी क्लॉडिया म्यूलर ने दस से बारह वर्षीय बच्चों के कई अध्ययन किए, और उनके नतीजों ने इसकी पुष्टि की। छात्रों को संयत रूप से आसान समस्याओं की शृंखला को हल करने को दिया गया; और इसके साथ कुछ बच्चों से कहा गया कि *'तुम इन समस्याओं में बहुत चतुर होगे',* और दूसरों से कहा गया कि *'तुमने इन पर बहुत मेहनत की होगी',* प्रयोग के दूसरे चरण में सभी बच्चों को यह चुनने का विकल्प दिया गया कि वे आगे किस तरह की समस्याओं पर काम करना चाहते हैं -- ऐसे सवाल जो आसान हों, जिनमें मैं अच्छा हूँ, या अधिक कठिन सवाल, जिनसे मैं सीख सकूँ। नतीजों ने दर्शाया कि जिन छात्रों की तारीफ उनकी बुद्धिमत्ता के लिए की गई थी उन्होंने दूसरे चरण के लिए आसान सवाल चुने, जबकि जिनकी प्रशंसा कोशिश के लिए की गई थी, उन्होंने अधिक कठिन सवाल चुने। ड्वेक ने छात्रों से एक अत्यावश्यक सवाल भी पूछा : उन्हें समस्याओं में कितना आनंद आया और क्या वे कुछ सवाल घर ले जाना चाहते हैं ताकि वहाँ उन पर काम कर सकें। यहाँ नतीजे बेहद विचित्र रहे। कुछ बच्चों से यह प्रश्न समस्याओं की पहली कड़ी पूरी होने और तारीफ के फौरन बाद पूछा गया इन बच्चों पर प्रशंसा जिस प्रकार की गई थी, का कोई अंतर नज़र नहीं आया। पर कुछ बच्चों ने

जब सवालों की दूसरी कड़ी भी पूरी कर ली, और उन्हें कहा गया कि उन्होंने पहली बार जितना अच्छा नहीं किया है, और तब जाकर उनसे सवाल पूछा गया। इन बच्चों में जिनकी पहले बुद्धिमत्ता के लिए प्रशंसा की गई थी, उन्होंने अपने आनंद के स्तर को उन बच्चों की तुलना में कम बताया, जिनकी प्रयास के लिए प्रशंसा की गई थी। साथ ही समस्याओं को घर ले जाने के विषय में भी उन्होंने कम आतुरता दिखाई। लगता यह है कि आनंद तथा उत्प्रेरणा में यह अंतर, असफलता अनुभव करने के बाद ही आया।

तो फिर क्या छात्र की क्षमता के वास्तविक स्तर का इस परिघटना से कोई वास्ता ही नहीं है? ड्वेक के अपने शब्दों में : 'छात्रों की क्षमताओं या बुद्धिमत्ता तथा प्रवीणता उन्मुख (मास्टरी ओरिएन्टेड) गुणों के विकास में कोई रिश्ता *नहीं* है। कुछ बेहद प्रतिभाशाली छात्र भी चुनौतियों से बचते हैं, मेहनत को नापसंद करते हैं, और कठिनाइयों के समक्ष मुरझा जाते हैं। और कुछ कम प्रतिभाशाली विद्यार्थी आगे बढ़ चीज़ों से भिड़ने को तैयार होते हैं, चुनौतियों से पनपते हैं, जब चीज़ें कठिन हो जाएँ तो उनसे डटकर जूझते हैं, और आपकी उम्मीदों से अधिक हासिल कर लेते हैं... (परन्तु) अगर प्रवीणता उन्मुख मनोवृत्ति हो तो वह समय के साथ छात्रों को अधिक सक्षम बनाने में मदद करती है।'

निष्कर्ष

उत्प्रेरणा एक स्वाभाविक मानवीय गुण है, जो हम सब में भारी मात्रा में होता है। दुर्भाग्य से सुबह से रात तक हमें जो गतिविधियाँ करनी पड़ती हैं, हम उनमें से प्रत्येक के लिए बेहद उत्प्रेरित नहीं होते। जब मुझे सिंक में ढेरों गंदे बर्तन दिखते हैं, तो मेरी प्रतिक्रिया मेरे उस छात्र से भिन्न नहीं होती, जिसका बस्ता गृहकार्य से भरा हो। उस पल जो भावना हावी होती है वह जो कर डालना है उसके प्रति **विरोध** की ही होती है। कई बार उत्प्रेरणा केवल सामने उपस्थित काम के प्रति विरोध का अभाव ही होता है। छात्रों के उत्प्रेरणा के स्तर को ऊपर उठाने के रास्ते ढूंढ़ने के बदले हम शिक्षक अपना ध्यान पलटकर विरोध की शक्ति पर केंद्रित कर सकते हैं। शिक्षक और विद्यार्थी साथ मिलकर यह सीख सकते हैं कि स्वयं में मौजूद विरोध का सामना करने में किस चीज़ की दरकार है। आखिर यह एक ऐसी ताकत है जिसका छात्र आजीवन सामना करेंगे, और स्कूल ही वह सबसे उपयुक्त अवसर है, जहाँ इसके बारे में सीखा जा सकता है।

जब हम अपने छात्रों को प्रेरित करने के लिए डंडे, गाजर या स्पर्धा को चुनते हैं, तो हम विरोध के मुद्दे को दरकिनार कर देते हैं। हमारे देश में हज़ारों-हज़ार बेहद प्रेरित बच्चे हैं, पर उनमें से बहुतों को कभी स्वयं को समझने या अपनी सहज प्रेरणाओं तथा इच्छाओं पर सोच-विचार करने को प्रोत्साहित नहीं किया गया है। अगर बाहरी स्पर्धा के अवलम्ब को हम हटा दें तो उनकी उत्प्रेरणा (मोटिवेशन) और सहज प्रेरणा (ड्राइव) पर क्या असर होगा? अगर आप मानते हैं कि शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी

आत्म-चिंतन करें और अपनी भावनाओं तथा उत्प्रेरणा की स्थिति को बेहतर समझें, तो आप अपनी शाला या कक्षा में, स्पर्धा को उत्प्रेरण की शक्ति के रूप में पूरी तरह से बाहर करने का निर्णय भी ले सकते हैं। पर ऐसे में आप तब निराश भी न हों, जब ऐसा करने के फौरन बाद आपके सभी छात्र जादूई तरीके से, अपना सर्वश्रेष्ठ कर, उम्दा काम करते, और उपलब्धि के आनंद से सराबोर होते नज़र न आएँ! प्रदर्शन तथा क्षमता पर बल देने से हट कर सीखने और कोशिश करने पर बल देने को महज 'हमारे छात्रों को उत्प्रेरित करने के बेहतर तरीके' के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। बल्कि यह तो नए सवालों, नई चुनौतियों, और बेशक नई कुण्ठाओं के लिए दरवाज़ा खोलता है -- इन सभी का अकूत शैक्षणिक मूल्य होता है।

संदर्भ व पुस्तक सूची

1. एम्स, सी., तथा आर.एम्स, 1984। 'सिस्टमस् ऑव स्टूडेंट एण्ड टीचर मोटिवेशनः टुवर्डस् ए क्वॉलिटेटिव डेफिनिशन'। *जर्नल आव एज्युकेशनल साइकॉलजी,* खण्ड-76, संख्या-4, 535-56
2. एम्स, सी., तथा जे.आर्चर, 1988। 'अचीवमेंट गोल्स इन द क्लासरूम : स्टूडेन्स् लर्निंग स्ट्रैटजीस् एण्ड मोटिवेशन प्रोसेसेस्'। *जर्नल ऑव एज्युकेशनल साइकॉलजी,* खण्ड-80, संख्या-3, 260-67
3. एम्स, सी., 1992। 'क्लासरूम्स् : गोल्स्, स्ट्रक्चर्स एण्ड स्टूडेन्ट मोटिवेशन'। *जर्नल ऑव एज्युकेशनल साइकॉलजी,* खण्ड-84, संख्या-3, 261-71
4. कोविन्गटन, एम.वी., तथा सी.एल. ओमेलिच, 1979। 'एफर्ट : द डबल एज्ड स्वोर्ड इन अचीवमेंट'। *जर्नल ऑव एज्युकेशनल साइकॉलजी,* खण्ड-71, संख्या-2, 169-82
5. डेची, ई.एल., ए.जे. श्वार्ज़, एल. शइनमैन, तथा आर.एम.रायन, 1981। 'एन इन्स्टुमेंट टू असेस एडल्टस्' ओरिएन्टेशन्स् टुवर्ड कंट्रोल वेर्सेस ऑटॉनमी विद चिल्ड्रन : रिफ्लेक्शन्स् ऑन इन्ट्रिन्सिक मोटिवेशन एण्ड परसीव्ड कॉम्पीटेन्स'। *जर्नल ऑव एज्युकेशनल साइकॉलजी,* खण्ड-73, संख्या-5, 642-50
6. डेची, ई.एल., आर.कोएस्टनर, तथा आर.एम.रायन, 1999। 'अ मेटा-एनलिटिक रिव्यू ऑव एक्सपेरिमेंटस् एक्सामिनिंग द इफेक्टस् ऑव एक्सट्रिंसिक रिवॉर्डस् ऑन इन्ट्रिंसिक मोटिवेशन'। *साइकोलजीकल बुलेटिन,* खण्ड-125, संख्या-6, 627-68
7. आइसनबर्गर, आर., तथा जे. कैमेरॉन, 1996। 'डैट्रिमेंटल इफेक्टस् ऑव रिवॉर्ड : रिएलिटी ऑर मिथ?' *अमेरिकन साइकॉलजिस्ट,* खण्ड-51, संख्या-11, 1153-66
8. गिअरी, डी.सी., 1996। 'द एवल्यूशन ऑव कॉग्निशन एण्ड द सोश्यल कंस्ट्रक्शन ऑव नॉलेज'। *अमेरिकन साइकॉलजिस्ट,* खण्ड-51, संख्या-3, 265-66
9. ग्राउत्जे एफ.एम.ई., टी.कैसर, ए.आहुविया, जे.एम.एफ.डोल्स, वाय.किम, एस.लाउ, आर.एम.रायन, एस.सॉन्डर्स, पी.श्मुक, तथा के.एम.शैल्डन, 2005। 'द स्ट्रक्चर ऑव गोल कन्टेनस् अक्रॉस 15 कल्चर्स'। *जर्नल ऑव पर्सनैलटी एण्ड सोश्यल साइकॉलजी,* खण्ड-89, संख्या-5, 800-16
10. हैन्डरलॉन्ग, जे., तथा एम.आर.लेप्पर, 2002। 'द इफेक्टस् ऑव प्रेज़ ऑन चिल्ड्रन्स इन्ट्रिंसिक मोटिवेशन : अ रिव्यू एण्ड सिन्थेसिस'। *साइकोलॉजिकल बुलेटिन,* खण्ड-128, संख्या-5, 774-95

11. हॉपकिन्स, जी., 2005, 'हाऊ कैन टीचर्स डेवलप स्टूडेन्टस् मोटिवेशन एण्ड सक्सेस? एन इन्टरव्यू विद कैरल एस.ड्वेक'। *एज्युकेशन वर्ल्ड,* स्कूल इश्यूस्, 2005

12. म्यूलर, सी.एम., तथा सी.एस.ड्वेक, 1998। 'प्रेज़ फॉर इन्टैलिजेन्स कैन अन्डरमाइन चिल्ड्रन्स् मोटिवेशन एण्ड परफॉर्मेन्स'। *जर्नल ऑव पर्सनैलिटी एण्ड सोश्यल साइकॉलजी,* खण्ड-75, संख्या-1, 33-52

13. रीव, जे., ई.बोल्ट, तथा वाय.काई, 1999। 'ऑटॉनमी सर्पोटिव टीचर्स : हाऊ दे टीच एण्ड मोटिवेट स्टूडेन्टस्'। *जर्नल ऑव एज्युकेशनल साइकॉलजी,* खण्ड-91, संख्या-3, 537-48

14. रीव., जे., तथा एच.यांग, 2006। 'वॉट टीचर्स से एण्ड डू टु सपोर्ट स्टूडेन्टस् ऑटॉनमी ड्यूरिंग अ लर्निंग एक्टिविटी'। *जर्नल ऑव एज्युकेशनल साइकॉलजी,* खण्ड-98, संख्या-1, 209-18

15. रायन, आर.एम., तथा ई.एल.डेची, 2000। 'सेल्फ-डिटर्मिनेशन थियोरी एण्ड द फेसिलिटेशन ऑव इन्ट्रिंसिक मोटिवेशन, सोश्यल डेवलपमेंट एण्ड वैल बीइन्ग'। *अमेरिकन साइकॉलजिस्ट,* खण्ड-55, संख्या-1, 68-78

❑❑❑